Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 8 | AUGUST 2023

श्रीमद्भगवद्गीता में अनुशासन की नैतिक–संहिता की एक विवेचना

अमित कुमार [1] | प्रोफेसर आर के एस अरोड़ा [2]

[1] शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र), भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर

[2] डीन, शिक्षा संकाय, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर

ABSTRACT:

श्रीमद्भगवद्गीता एक नैतिक–संहिता है। इसमें आचार–विचार, मन, ह्रदय, इन्द्रियों की शुद्वता पर अतिशय बल दिया गया है। गीता शिक्षार्थी पर किसी अनुशासन को स्थापित करने की अनुशंसा नही करती, फिर भी उसके विचारों से यह प्रतिध्वनित होता है कि वह अनुशासित जीवन व्यतीत करने की ओर प्रेरित अवश्य करती है। व्यक्ति अनुशासित रहने पर ज्ञान (शिक्षा) के स्वरूप का दिग्दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। गीता आत्मानुशासन की हिमायती है। गीता आत्मानुशान के अतिरिक्त सामाजिक अनुशासन मे भी विश्वास करती है। श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनो प्रकार के सामाजिक अनुशासन में रहने की हिमायती है। गीता मुक्तात्मक अनुशासन की भी हिमायत करती है, किन्तु यह अनुशासन प्रिय– अप्रिय का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है। अनुशासन के मुख्यतः तीन रूप माने जाते है– दमनात्मक, प्रभावात्मक एवं मुक्त्यात्मक शिक्षा में मनोविज्ञान के पदार्पण एवं छात्रों की रूचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता को महत्व देने से आज मुक्त्यात्मक अनुशासन की अत्यधिक हिमायत करती है। श्रीमद्भगवद्गीता में अनुशासन की नैतिक–संहिता की एक विवेचना करती है।

KEYWORDS:

नैतिक–संहिता, अनुशासन, आत्मानुशासन, सामाजिक अनुशासन, मुक्त्यात्मक अनुशासन

प्रस्तावनाः–

गीता में बार–बार धर्म के अनुरूप कार्य एंव व्यवहार करने की बात कही गयी है। स्वधर्म पर आरूढ रहने हेतु आग्रह भी किया गया है, इससे भी इस विचार की पुष्टि होती है कि वह व्यक्ति को अनुशासन–प्रिय रहने की हिमायती है। ऐसे ही विचार से सम्बन्धित गीता का संदेश है–

''काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।

महशनों महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम।। (गीता 3/37)

तस्मात्तवमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान–विज्ञान नाशनम्।।(गीता 3/41)

अर्थात् काम, क्रोध ये संसार के सबसे बडे शत्रु है। इसलिए इन्द्रियों का संयम करके ज्ञान (अध्यात्म) और विज्ञान (विशेष ज्ञान) से इन नाश करने वाले पापियों को तू मार डाल। इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि गीता व्यक्ति को अपने ऊपर कठोर अनुशासन रखने की शिक्षा देती है। अर्थात् वह आत्मानुशासन की हिमायती है।

गीता का मत है कि अनुशासन में रहना व्यक्ति के लिये प्रारम्भ में विष के समान दुःस्वादु लगता है किन्तु इसका जीवन मे उत्तरोत्तर अभ्यास करने पर, अन्त में यह अमृत के समान हो जाता है क्योकि व्यक्ति अनुशासित रहने पर ज्ञान (शिक्षा) के स्वरूप का दिग्दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। वह मानहीनता (अमानित्व–विनम्रता), दम्भहीनता, अहिंसा, क्षमा, आर्जव, (सरलता) आचार्य की उपासना, शौच (शरीर और मन की पवित्रता), स्थिरता और आत्म–संयम, इन्द्रियों और विषयों के प्रति वैराग्य और अंहकारहीनता तथा जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, और दुःखो से युक्त दोषो को समझना, अनासक्ति, पत्नी, पुत्र, गृह, आदि के प्रति ममत्व न रखना, तथा इष्ट और अनिष्ट के प्रति समभाव एवं समचित्त रखना,आराध्य के प्रति योग से युक्त होकर अव्यभिचारिणी– एकान्तिक भक्ति रखना, एकान्त मे रहना, जन समुदाय के प्रति विरक्त होना; आत्मज्ञान में स्थिति, तत्वज्ञान में अन्तदृष्टि रखने में वह समर्थ हो सकेगा। ज्ञान की प्राप्ति के लिए ये सब अत्यन्त आवश्यक है। क्योकिं

ईश्वरः सर्वभूतानां ह्रदेशऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रमयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया।।

सब प्राणियों में ईश्वर ह्रदय में रहकर अपनी माया से उसे घुमाता रहता है। मानों सभी (किसी) यंत्र पर आरूढ़ हो। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे अनुशासन में रहकर अपने आपको अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दे, इससे ही उन्हें आत्म–ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।

गीता आत्मानुशान के अतिरिक्त सामाजिक अनुशासन मे भी विश्वास करती है। गीता में बार–बार विभिन्त्र वर्णो से अपने धर्म के अनुकूल कार्य करने का आग्रह निहित है। गीता में स्पष्ट वर्णित है। कि–

चातुवर्ण्य मया सृष्टं कर्म विभागशः।

तस्यकर्त्तारमपि मां विद्वयकर्त्तारम् व्ययम्।। (गीता 4/13)

अर्थात् चारो वर्णो का विभाजन उनके गुण–कर्म के आधार पर मेरे ही द्वारा किया गया है। मैं ही इसका कर्ता और अकर्ता दोनों हूँ। किन्तु–

स्वे–स्वें कर्मण्यभिरतः संसिद्वि लभतें नरः।

स्वकर्मनिरतः सिद्वि यथा विन्दति तच्छृणु।। (गीता 18/45)

सभी व्यक्ति अपने–अपने कर्मो में नित्यरत लगे रहने पर परमसिद्वि की प्राप्ति करते है। अस्तु इन विचारों से यह प्रति ध्वनित होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनो प्रकार के सामाजिक अनुशासन में रहने की हिमायती है।

गीता मुक्तात्मक अनुशासन की भी हिमायत करती है–

इति में ज्ञानमाख्यतं गुह्याद्गुह्यतरं मया।

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।।

अर्थात् अन्ततः मैने तुझसे गुह्यातिगुह्य ज्ञान बता दिया है। इसका पूर्ण विचार करके जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा कर। इस कथन से यह प्रतिध्वनित होता है। कि गीता मुक्तात्मक अनुशासन की भी समर्थक है। किन्तु गीता का यह कथन एकदम अन्त में कहा गया है, इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि यह कथन तत्वज्ञान का पूरा अर्थ जान एंव समझ लेने वाले व्यक्तियों के लिए कहा गया है। कि वै जैसा उचित समझे वैसा करें। अस्तु कहा जा सकता है कि गीता मुक्तात्मक अनुशासन की समर्थक है,

विवेचना

वर्तमान समय के अनुशासन की संस्थिति को जानने एवं समझने से यह स्पष्ट होता है कि आज अनुशासन मात्र मजाक बनकर शिक्षा–संस्थाओं में रह गया है, इसका कोई भी रूप इनमें परिलक्षित नही हो रहा है। अनुशासन के मुख्यतः तीन रूप माने जाते है– दमनात्मक, प्रभावात्मक एवं मुक्त्यात्मक शिक्षा में मनोविज्ञान के पदार्पण एवं छात्रों की रूचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता को महत्व देने से आज मुक्त्यात्मक अनुशासन की अत्यधिक माँग की जा रही है, जो स्वतंन्त्रता प्रदान करने पर बल देती है। वस्तुतः बालकों को शिक्षा में स्वतंत्रता देने से ही वर्तमान समय में अनुशासन की भावना का लोप हुआ है और अनुशासनहीनता की समस्या का अभ्युदय। छात्रगण स्वंतन्त्रता को स्वच्छन्दता मानकर आचरण कर रहे है, जिससे दिन प्रतिदिन यह समस्या विकट रूप धारण करती जा रही है। यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता भी मुक्तात्मक, अनुशासन की समथक है। किन्तु वह इस अनुशासन को उन्ही व्यक्तियों के लिए इस्तेमाल करने पर बल देती है, जो तत्व ज्ञान, विविध क्रिया विधियों एवं सांसारिक ज्ञान एवं विविध मूल्यों के जानकार एवं संयमी है। जो स्वतंन्त्रता के महत्व को जानते एवं समझते है। वस्तुतः गीता सभी के लिए मुक्तात्मक अनुशासन स्थापित करने के लिए प्रेरित करती, किन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के सभी स्तरों पर मुक्तात्मक अनुशासन पर महत्व दिया जा रहा है जिसके

कारण विविध समस्याओं का अभ्युदय हो रहा है। गीता का यह अनुशासन आज स्थापित किया जाय तो अनुशासनहीनता की सारी समस्या समाप्त हो जायेगी।

प्रभवात्मक अनुशासन की स्थापना में शिक्षक का योगदान एवं योग्यता का विशेष महत्व होता है। किन्तु वर्तमान समय में शिक्षक मूल्यवादी एवं आदर्शवादी नही रह गये है जो प्रभावात्मक अनुशासन स्थापित करने में मदद कर सके। इसके लिए गीता के शैक्षिक मूल्यों एवं शिक्षक के कर्तव्यों का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में महत्व देना ही होगा। इससे ही अनुशासन का यह रूप क्रियाशील बन सकेंगा।

गीता दमनात्मक अनुशासन का विरोध करती है, साथ ही साथ यह ज्ञान देती है कि जब तक व्यक्ति स्वयं अनुशासन का महत्व नही समझेगा। उसके अनुकूल चलने के लिए प्रेरित नही होगा। तब तक कोई भी अनुशासन सफल नही हो सकता। इसीलिए वह 'आत्मानुशासन' को सर्वश्रेष्ठ अनुशासन के रूप में मान्यता देती प्रतीत होती है। वस्तुतः जब तक कोई भी व्यक्ति स्वयं को नही जानेगा, अपने कृत कार्यो पर चिन्तन–मनन नही करेगा। तब तक वह दूसरों के छिद्रान्वेषण में ही लगा रहेगा और अनैतिक एवं अनुशासन को ध्वस्त करने वाले कार्यो को करता रहेगा। किन्तु जब वह स्वयं अपने ऊपर कठोर नियंत्रण रखेगा, कृत कार्यो पर चिन्तन करेगा, तो वह अनुशासन की अच्छाई को जानेगा, समझेगा और स्वयं के जीवन में कोई भी ऐसा कार्य नही करेगा जो अनुशासनहीनता उत्पन्न करते है।

आत्मानुशासन की स्थापना में नैतिक एवं धार्मिक मूल्य विशेष सहायक होते है। धर्म के द्वारा व्यक्ति ईश्वर, आत्मा, परलोक, दया, सहयोग, शान्ति, पवित्रता, क्षमा, उदारता, इत्यादि मूल्यों की जानकारी प्राप्त करता है। तद्नुकूल उसमे किसी सत्ता की अनुभूति के सम्बन्ध में भावनाओं का जागरण होता है, जिससे वह गलत कार्यो को करने से डरता है और स्वधर्म पालन, कर्तव्य, परायणता, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा, जैसे मूल्यों के अनुरूप आचरण एवं व्यवहार करता है, जिससे आत्मनुशासन की भावना सुदृढ़ होती है। किन्तु वर्तमान समय में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का शिक्षा में कोई स्थान नही है। जिसे गीता के शैक्षिक मूल्यों एवं विचारधारा से ग्रहण करना होगा और शिक्षा के विविध अगों में इन्हें पिरोना होगा, तभी वर्तमान समय में अनुशासनहीनता की समस्या का अन्त हो सकेगा, शिक्षक भी आदर्शवादी एंव मूल्यवादी बन सकेगा और आत्मानुशासन से आच्छादित छात्र प्राचीन भारतीय आदर्शो को जीवन में उतारते हुए वर्तमान वैज्ञानिक पराकाष्ठा से समन्वय स्थापित करते हुए चल सकेगे। मूल्यों के सम्बन्ध में सभी प्रकार की समस्याआ का अन्त होगा और वसुधैव कुटुम्बकम् की उक्ति चरितार्थ होगी।

निष्कर्ष–

गीता का संदेश है– ''काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। महशनों महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम।। (गीता 3/37) अर्थात् काम, क्रोध ये संसार के सबसे बडे शत्रु है। अर्थात् वह आत्मानुशासन की हिमायती है। गीता का व्यक्ति अनुशासित रहने पर ज्ञान (शिक्षा) के स्वरूप का दिग्दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। गीता आत्मानुशान के अतिरिक्त सामाजिक अनुशासन मे भी विश्वास करती है। गीता मुक्तात्मक अनुशासन की भी हिमायत करती है–इति में ज्ञानमाख्यतं गुह्याद्गुह्यतरं मया। विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।। अनुशासन के मुख्यतः तीन रूप माने जाते है– दमनात्मक, प्रभावात्मक एवं मुक्त्यात्मक। वर्तमान समय में अनुशासन मात्र मजाक बनकर शिक्षा–संस्थाओं में रह गया है, इसका कोई भी रूप इनमें परिलक्षित नही हो रहा है। वस्तुतः बालकों को शिक्षा में स्वतंत्रता देने से ही वर्तमान समय में अनुशासन की भावना का लोप हुआ है और अनुशासनहीनता की समस्या का अभ्युदय। छात्रगण स्वंतन्त्रता को स्वच्छन्दता मानकर आचरण कर रहे है, जिससे दिन प्रतिदिन यह समस्या विकट रूप धारण करती जा रही है। मुक्तात्मक अनुशासन स्थापित किया जाय तो अनुशासनहीनता की सारी समस्या समाप्त हो जायेगी। प्रभवात्मक अनुशासन की स्थापना में शिक्षक का योगदान एवं योग्यता का विशेष महत्व होता है। इसके लिए गीता के शैक्षिक मूल्यों एवं शिक्षक के कर्तव्यों का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में महत्व देना ही होगा। इससे ही अनुशासन का यह रूप क्रियाशील बन सकेंगा। आत्मानुशासन की स्थापना में नैतिक एवं धार्मिक मूल्य विशेष सहायक होते है। धर्म के द्वारा व्यक्ति ईश्वर, आत्मा, परलोक, दया, सहयोग, शान्ति, पवित्रता, क्षमा, उदारता, इत्यादि मूल्यों की जानकारी प्राप्त करता है। किन्तु वर्तमान समय में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का शिक्षा में कोई स्थान नही है। जिसे गीता के शैक्षिक मूल्यों एवं विचारधारा से ग्रहण करना होगा। आत्मानुशासन से आच्छादित छात्र प्राचीन भारतीय आदर्शो को जीवन में उतारते हुए वर्तमान अनुशासन की नैतिक–संहिता को ग्रहण करना होगा।

REFERENCES

1. गीता प्रबोधनी, सवंत् 2075, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. गीता, शंकर भास्य , गीता प्रेस गोरखपुर।
3. त्यागी गुरूशरणदास भारतीय उभरते क्षितिज, अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
4. शिक्षांक अंक कल्याण , वर्ष 1988 गीता प्रेस गोरखपुर।
5. मुखर्जी ,राधाकुमुद, हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन ऐशेन्ट इंडियन ,मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, दिल्ली।
6. गुप्ता, एस. पी. एवं अलका गुप्ता (2015), भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज ।
7. कबीर, हुमायुँ (1956), स्वतन्त्र भारत मे शिक्षा, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
8. सैयेदन, के. जी. (1962), शिक्षाशास्त्र, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।